षट्प्राभृत[1] का रचनाकार कौन और उसका रचनाकाल कौन-सा?

डॉ. के.आर. चंद्र
अहमदाबाद...

डॉ. ए.एन. उपाध्ये साहब ने प्रवचनसार की प्रस्तावना में षट्प्राभृत के रचनाकार के विषय में जो कुछ अभिप्राय व्यक्त किया है, उसी को लेकर यह चर्चा की जा रही है। कुन्दकुन्दाचार्य के प्रवचनसार और षट्प्राभृत की भाषा का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाए तो इन दोनों की भाषा के स्वरूप से ऐसा लगता है कि ये दोनों कृतियाँ अलग-अलग काल की रचनाएँ हैं, अतः किसी एक ही आचार्य की ये रचनाएँ नहीं है, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। इस तथ्य की स्पष्टता के लिए नमूने के रूप में भाषिक प्रयोगों के कुछ उदाहरण इधर प्रस्तुत किए जा रहे हैं--

	प्रवचनसार	भाषिक विशेषताएँ	षट्पाहुड
१.	सिर्फ -दि, -दे, का ही प्रयोग	वर्तमान काल तृ.पु. एकवचन का प्रत्यय	-इ,-ए प्रत्ययों की संख्या -दि, -दे से तीन गुणी है। अनुपात २१५ : ७४
२.	'आदा' और 'अप्पा' के	'आत्मन' शब्द विविध रूप	'आदा' और 'अप्पा' के सिवाय 'आया' भी जो परवर्ती काल का रूप है।
३.	सिर्फ -णि विभक्ति	नपुंसक लिंग शब्दों के लिए प्रथमा द्वितीया बहुचवचन की विभक्तियाँ	-णि और-इं भी अनुपात १:७.५
४.	अनुपात -ए, -म्हि, म्मि ४.५ २ : १	सप्तमी एक वचन के प्रत्यय	सिर्फ -ए और -म्मि अनुपात ५:१ शौरसेनी का मुख्य प्रत्यय -म्हि का सर्वथा अभाव
५.	-दूण १ -च्चा ३ -इय १ -संस्कृत प्रत्यय वाला रूप मात्र	संबंधक भूत कृदन्त के प्रत्ययों का अनुपात	-दूण -च्चा -इय ४ -त्ता २ ध्वनि परिवर्तन वाला १ -त्तु१ -तुं २ ध्वनि परिवर्तन के साथ ६५ -तुं ६ -तूण ९ -ऊँण ३९ -ऊँणं ७

उपर्युक्त उदाहरणों से तुं और चुं प्रत्यय हेत्वर्थक के प्रत्यय हैं जिनका प्रयोग सं.भू. कृदन्त के लिए षट्प्राभृत में किया गया है। यह प्रवृत्ति परवर्ती काल की है और अपभ्रंश काल के समीप ले जाती है।

ऊपर के दोनों ग्रंथों के तुलनात्मक प्रत्ययों से स्पष्ट होता है कि प्रवचनसार की शौरसेनी भाषा से षट्प्राभृत की भाषा महाराष्ट्री प्राकृत के अधिक नजदीक है।

६. इन प्रयोगों के सिवाय षट्प्राभृत में अपभ्रंश भाषा के सदृश प्रयोगों की बहुलता है। अनेक प्रयोगों में से कुछ उदाहरण नमूने के रूप में नीचे प्रस्तुत किए जा रहे हैं--

७. विभक्ति रहित मूल नाम शब्दों के प्रयोग तथा अन्य अपभ्रंश प्रयोग

क. प्रथमा एक वचन

चेइय, ४.९०, अनुगूहण, २.१०, वुत्त, ३.२१, णिम्मम (स्त्रीलिंग) ४.४९

ख. प्रथमा बहुवचन

वड्ढमाण, १.६, सिक्खावय, २.२२, णिठभय, ४.५० मुणि, ५.१५६

ग. द्वि. ए. वचन, अप्पा, ३.१६, विणय ४.१७, गारव ५.१०४ कसाय ६.२६, सेवा सद्धा २.१२

घ. द्वि. ब. वचन सुपरीसह ५.९२

च. षष्ठी ए.व. परिवार, १.१०

छ. सप्तमी एक वचन रहिय २.२०, सिवमग्ग ३.२, लेसा (स्त्री) ४.३३, दंसण, ४.२९

ज. नपुं, ब.व. के प्रत्यय इ. वाले रूपों में इं को छन्द की दृष्टि से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु के बदले लघु पढ़ना पड़ता है, अर्थात् यह इं. वास्तव में - इं प्रत्यय माना जाना चाहिए जो परवर्ती काल का और अधिकतर अपभ्रंश में प्रयुक्त हुआ है। उदाहरण चउदसपुव्वाइं ५.५२

झ. दीर्घ स्वरान्त शब्दों का विभक्ति रहति ह्रस्व स्वरांत शब्दों के रूप में प्रयोग--

सील (शिलायाम्) स.ए.व. ४.५६

दय (दयाम्) द्वि.ए.व. ५.१३१

एसण (एषणा) [(प्र.ए.व. (स्त्रीलिंग)] २.३६

ञ. तृ.ए.व. के लिए -ए और इं. विभक्ति अर्थात् अपभ्रंश विभक्तियों के प्रयोग

इक्किं (एकेन) ६.२२, जिणे कहियं (जिनेन कथितम्) ४.६१, संखेवि (संक्षेपेन) ५.१२६

ट. षष्ठी ए.व.या. ब.व. का रूप ताह (तस्य या तेषाम्) ३.२७, जाहु (यस्य) ३.२७

ठ. स.ए.व. की विभक्ति इ.

निरइ (नरके) ६.२५

ड. बिना अनुस्वार के अव्ययों का प्रयोग कह (कथम्) ३.२४ (कहं)

ढ. अपभ्रंश के समान अन्य शब्द रूपों के प्रयोग इक्क (एक) ६.२२, इत्तहे (एतस्मात्) २.३०

अट्ठारह (अष्टादश) ६.९०

तेरहमे (त्रेयोदशे) ४.३२ (देखिए पिशल २४३, २४५, ४४१)

ण. वर्तमान काल के तृ.ब.व. का प्रत्यय -हि लहहि (लभन्ते) ६.७७ चिट्ठहि (तिष्ठन्ति), ६.१०४, १०५

त. आज्ञार्थ द्वि. पु. ए.व. का प्रत्यय-इ भावि (भावय) ५.८०, ९४ (३ बार)

परिहरि (परिहर) २.६

थ. सं.भू. कृदन्त के लिए एवि प्रत्यय लेवि (लात्वा) ६.२१, चएवि (त्यक्त्वा) ६.२८

द. भू धातु का भूत कृदन्त

हुओ (भूतः) ४.६१ यह रूप तो आधुनिक भारतीय आर्य भाषा में प्रयुक्त होने वाले रूप के जैसा है।

ऊपर जितने भी प्रयोग दिए गए हैं वे अपभ्रंश भाषा के रूपों के सदृश हैं उनको यदि बदलकर शौरसेनी के रूपों के समान बना दिया जाए तो चूँकि यह कृति पद्यात्मक है, छन्द-भंग हो जाता है। अतः इस ग्रंथ का समीक्षित संपादन किया जाने पर इसकी भाषा में परवर्ती काल की भाषा के जो तत्त्व मिलते हैं, उनके स्थान पर यदि प्राचीन भाषा के प्रयोग रख दिए जाएँ तो वे अनुपयुक्त ही ठहरेंगे[२]।

इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि इस ग्रंथ की भाषा और प्रवचनसार की भाषा में बहुत ही अन्तर है। अतः न तो इसकी रचना स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा की गई है और न ही कुन्दकुन्दाचार्य के पूर्व में प्रचलित गाथाओं का उन्होंने संकलन किया है । यदि इन दोनों संभावनाओं में से किसी एक को भी मान्य रखा जाए जैसा कि डा. ए.एन. उपाध्ये का आग्रह-मन्तव्य -तर्क है[३] तब फिर यह भी मानना पड़ेगा कि कुन्दकुन्दाचार्य का समय भी इतना प्राचीन नहीं है, जैसा डा. उपाध्ये ने साबित करने का विफल प्रयत्न किया है। ऐसी अवस्था में कुन्दकुन्दाचार्य का समय भी पाँचवीं-छठी शताब्दी के बाद का मानने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। डा. उपाध्ये साहेब ने इस विषय में स्पष्ट अभिप्राय व्यक्त नहीं किया है। उन्होंने W. Denecke के मत को निराधार सिद्ध करने का विफल प्रयत्न किया है[४] जो ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि षट् प्राभृतकी भाषा कुन्दकुन्दाचार्य के समयसार की भाषा से परवर्ती काल की है।

हमारे द्वारा किया गये भाषा के इस सूक्ष्म अध्ययन-विश्लेषण से भी यही सिद्ध होता है कि प्रवचनसार और षट्-प्राभृत की भाषा के स्वरूप के काल में बहुत बड़ा अंतर है तथा षट्प्राभृत और प्रवचनसार के रचनाकार एक ही आचार्य कदापि हो ही नहीं सकते।

डा. ए.एन. उपाध्ये साहेब W. Denecke के इस मत को कि षट्प्राभृत श्री कुन्दकुन्दाचार्य की रचना नहीं हो सकती और यह ग्रंथ कुन्दकुन्दाचार्य से परवर्ती काल का है, मान्य नहीं रखते और जो दिगंबर जैन परंपरा चली आ रही है उसे ही मान्य रखने की सलाह देते हैं। उनका जो (Arguement) तर्क है, उसे उनके ही शब्दों में यहां पर उद्धृत (अंग्रेजी में) किया जा रहा है

``I am perfectly aware that it is only on the ground of

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

current tradition that Kundakunda is accepted as the author of these pahudas and no evidence is coming forth, nor there is anything in these texts, taken as a whole, which should preclude us from taking Kundakunda as the author of these works. The texts of these pahudas as utilised by me, could not be claimed to be critical, so there is every probability of omissions and commissions of gathas especially in such traditional texts: W. Denecke doubts Kundakunda's authorship, but he gives no diefinite reasons. Dialactally he finds that six pahudas are younger than samayasara etc; but this cannot be a safe guide, unless we are guided by critical editions. The reason for the presence of Apabhramsa forms in these pahudas, as compared with pravacansara, It have explained in my discussion on the dialect of pravacansara. it is imaginable that traditionally compiled texts might be attributed to Kundakunda because of his literary reputation,but to prove this we must some strong evidence potent enough to cancel the current tradition.In conclusion I would say that these pahudas contain many ideas, phrases and sentences which are quite in tune with the spirit and phrasiology of Pravacansar[5]."

उपर्युक्त उद्धरण में उनका यह कहना कि षट्प्राभृत का संस्करण समीक्षित संपादन नहीं है और इसमें प्रवचनसार के समान ही Ideas, Phrases और Sentences प्राप्त हो रहे हैं, इसलिए उसे चालू परंपरा के विरुद्ध परवर्तीकाल की रचना मानना उचित नहीं होगा। किसी भी परवर्तीकाल के ग्रंथ में पूर्ववर्ती काल के ग्रंथ के समान विषयवस्तु का और शैली का पाया जाना एकान्ततः यह साबित नहीं करता कि ऐसी परवर्ती काल की कृति अपने से पूर्ववर्ती काल की रचना के समय में ही रची गई होगी। उन दोनों की भाषा के स्वरूप पर भी विचार किया जाना चाहिए। षट्प्राभृत की समीक्षित आवृत्ति का क्या अर्थ होता है? क्या उसमें से ऐसी गाथाएं विक्षिप्त मानी जाएं जिनमें अपभ्रंश के स्पष्ट प्रयोग हैं या ऐसी गाथाओं की भाषा का मूल स्वरूप अपभ्रंश से प्रभावित नहीं था परंतु बाद में काल के प्रभाव से उसमें अपभ्रंश के प्रयोग घुस गए, यदि ऐसा माना जाए तो यह उपयुक्त नहीं है। षट्प्राभृत में सिर्फ पाँच-दस प्रयोग ही अपभ्रंश के हों ऐसा नहीं है। इसमें तो हरेक पाहुड में बीसों प्रयोग अपभ्रंश के मिलते हैं[6] और यदि उन अपभ्रंश प्रयोगों को सुधारकर उन्हें शौरसेनी प्राकृतके अनुरूप (यानी समीक्षित आवृत्ति बनाने का यही अर्थ होता हो तो?) बना दिया जाए तो सभी जगह गाथाओं में छन्दों भंग हो जाता है। किसी भी पद्यमय रचना में इस प्रकारकी क्षति समीक्षित आवृत्ति के Shandard मापदंड से मान्य ठहरेगी नहीं। नमूने के रूप में कुछ ही ऐसे सुधारे हुए उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं, जिनसे स्पष्ट हो जाएगा कि ऐसा साहस कहाँ तक उचित होगा?

षट्प्राकृत में उपलब्ध प्रयोग और संशोधित प्रयोग दोनों में मात्राओं का अंतर और तब फिर संशोधित पाठ से छन्दोभंग का भय।

षट्प्राभृत के पाठ

उपलब्ध मुद्रित पाठ और मात्राएँ	संशोधित पाठ और मात्राएँ (कल्पित समीक्षित पाठ)
१. प्रथमा एक वचन	दुस्सील १.१६ (५)
	दुस्सीलो (६)
गरहिड ३.१९ (४)	गरहिओ (५)
भणिय ४.५४ (३)	भणिया (स्त्री.) (४)
२. प्रथमा बहुवचन मुणि ५.१५६ (२)	
	मुणी, मुणिणो, मुणीओ,
	मुणओ (३)(४) (५) (४)
णिष्भय ४.५०	णिष्भया
(४)	(५)
साहु ६.१०४	साहुणो, साहवो, साहू, साहूओ
(३)	(५) (५) (४) (६)
३. द्वितीया एक वचन	
झाण ५.११९	झाण (४)
मिच्छत्त ५.११५	मिच्छत्तं
(५)	(६)
विरइ ६.१६	विरइं
(३)	(४)
मणु ५.१४०	मणं
(२)	(३)
४. तृतीया एक वचन	
जिणे ४.६१	जिणेण, जिणेणं
	(४) (५)
५. आज्ञार्थ	भावय, भावसु, भावहि
भावि ५.१३१	(४) (४) (४)
(३)	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. भूत कृदन्त हुड ४.३०	हुओ, भूदो, भूओ
(२)	(३) (४) (४)
वुत्त (३).२१	वुत्तं (४)
७. संबंधक भूत कृदन्त	आरुहित्ता, (आरिहिऊण - तूण दूण)
आरुहवि (५)	(७)
	आरुहितुं दुं, उं
झाएवि	(६)
(५)	आइऊण तूण, दूण
	(६)
	आइत्ता, झाइत्तु
	(६) (६)
८. अप्पय	
जह ३.१८	जहा
(२)	(३)
ओ ६.८	तु या उ
(२)	(१) (१)
अणुदिणु	अणुदिणं
(४)	(५)

इस तरह से समीक्षित या संशोधित आवृत्ति में जो पाठ कल्पित किये गए हैं, वे किसी हस्तप्रति में मिल भी जाएँ तो सर्वत्र छन्दोभंग होगा अतः ऐसी कल्पना करना कि अभी जो अपभ्रंश रूप उपलब्ध हैं वे विश्वसनीय नहीं हो सकते, यह किस आधार पर मान्य रक्खा जाए? ऐसी परिस्थिति में यही मानना उपयुक्त होगा कि षट्प्राभृत में कितने ही ऐसे प्रयोग हैं, जो परवर्ती (प्रवचनसार की भाषा की तुलना में) काल के और अपभ्रंश-भाषा संबंधी हैं, जिसके कारण षट्प्राभृत की रचना का काल अपभ्रंश युग में चला जाता है और इसलिए यह न तो स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य की ही रचना है और न ही उनके द्वारा प्रचलित प्राचीन गाथाओं का संकलन किया गया है। जैसी कि डा. ए.एन. उपाध्ये साहब की धारणा है।

सन्दर्भ

१. षट्प्राभृतादिसंग्रह, संपादक - पं. पन्नालाल सोनी, श्री माणिक चन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, वि.सं. १९७७ (ई.सन् १९२२)

२. इसके लिए आगे देखिए पृ. सं. ६९

३. देखिए प्रवचनसार, सम्पादक - ए.एन. उपाध्ये की प्रस्तावना पृ. सं. ३५ (श्रीमद् राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम अगास, १९६४

४. वही, पृ ३५

5. Introduction, P. 35

६. लगभग १५० से अधिक प्रयोग अपभ्रंश भाषा के सदृश मिल रहे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org